ज़ख़्म

जिंदर

हिन्दी ADDA

ज़ख़्म

https://www.hindiadda.com/zakhm/

"मुझे तो इतनी दूर से ठीक से नहीं दिखता।" ताया जी ने अपनी छड़ी पकड़कर उठते हुए कहा था। वह टी.वी. से करीब दो फुट दूर, बिलकुल सामने, पैरों के बल जा बैठे थे। मैं स्वयं कुर्सी उठाकर उनके पास ले गया था। जबरन उन्हें कुर्सी पर बिठाया था। वह अपनी ही धुन पर सवार कहे जा रहे थे, "कोई नहीं... कोई नहीं... मैं ऐसे ही बैठा करता हूँ। फिलम सोहणी है। मुझे ठीक से देखने दे। मैं कौन सा बाहरी बंदा हूँ। मेरा अपना घर है, मैं जैसे मर्जी बैठूँ।"

मैंने कहा था, "फिल्म का क्या है। मैं फिर शुरू से लगा देता हूँ।"

ड्राइंगरूम में पड़ा बत्तीस इंची एल.सी.डी. हमसे दसेक फुट की दूरी पर था। हम भी मेज़-सोफ़ा खींचकर उनके पास आ बैठे थे।

वह माथे पर हाथ की छतरी बनाकर एकाग्रचित्त-से फिल्म देख रहे थे। उन्होंने दाईं लात बाईं लात पर रखी हुई थी। उन्होंने धोती पहन रखी थी। वह बार बार टखने के ऊपर वाली जगह पर खाज कर रहे थे। फिर वह टखने के ऊपर खाज करते करते अपना हाथ घुटने के नीचे के गड्ढ़े पर ले आए तो मैं उनका ज़ख़्म देखकर अचंभित रह गया था। टखने के पास का ज़ख़्म तो मैंने जब वह आकर बैठे ही थे, तभी देख लिया था। शायद, पहले भी कभी देखा होगा, पूरी तरह याद नहीं। पर यह ज़ख़्म इतना बड़ा और गहरा होगा, मुझे इस बात का पता नहीं था। जैसे शहतूत के दरख़्त के तने में कोटर-सा बना होता है, नीचे से लेकर ऊपर टहनियों तक, ठीक वैसा ही उनका यह ज़ख़्म था। कई जगहों से मवाद जैसा कुछ कुछ रिस रहा था। मुझे घिन्न-सी आई थी। शायद, मेरे साथ बैठे दोस्तों को भी आई होगी। फिर मैंने सोचा था कि क्या मालूम उनका इस तरफ़ ध्यान गया ही न हो। मेरी नज़रें ही उस पर केंद्रित हुई हों। मैं खुद चाहता था कि वे उनके ज़ख़्म को न देखें।

उन्होंने अपनी धोती को फिर से टखने तक फैला लिया था, इस डर से कि कहीं कोई मक्खी न आ बैठे। चारों ओर से बेफिक्र वह फिल्म देखने में मदमस्त थे। उन्हें पता ही नहीं लगा था कि कैमरामैन ने कब उनके कुर्ते पर माइक चिपका दिया था।

हमने दो घंटों तक उनका इंतज़ार किया था। कई छोटे-छोटे पैग सिप किए थे। हम यानी चार दोस्त। मैं उर्फ़ जगमोहन गोगना, मानव शास्त्र का प्रोफ़ेसर, स्टेट युनिवर्सिटी ऑफ़ न्यूयार्क, बिनघंटन से, समाज शास्त्र विभाग का हैड प्रो. खालिद जावेद, सिंगापुर की नेशनल युनिवर्सिटी से, डा. जसपाल कलेर जिसने पुरातन एशियन इतिहास पर कई शोध पत्र लिखे थे और दिल्ली से आया कैमरामैन हरि भटनागर।

प्रो. जावेद का गाँव कसूर के करीब पड़ता था। उसके माँ-बाप नूरमहल से उजड़कर उधर पाकिस्तान में चले गए थे। उसकी दो चाचियाँ, तीन बुआ मारी गई थीं। उसकी एक चाची ने बताया था कि बच्चों को बचाने की खातिर उन्हें पिछली कोठरी में बंद कर दिया गया था। उनके इन बारह बच्चों के विषय में कुछ भी पता नहीं चला था कि वे ज़िंदा थे या क़त्ल कर दिए गए थे। उसके बाबा का कहना था कि शायद किसी ने तरस खाकर बच्चों को न मारा हो, उनका धर्म बदल दिया हो। उसके बाबा ने दो वर्ष बाद अपने घर में रहने वाले के नाम एक ख़त लिखकर भेजा था जिसमें इन बच्चों के बारे में पूछा गया था। परंतु प्रत्युत्तर में उसे कोई जवाब नहीं मिला था।

अब जावेद इन बच्चों की तलाश में मेरे संग आया था। उसे यकीन था कि इनमें से कोई न कोई अवश्य ही जीवित होगा। अगर आठ वर्षीय रज़ा जीवित हुआ तो उससे बहुत कुछ पता चल सकता था।

"उसे कहते हैं नूरमहल की सराय," मैंने सामने की ओर देखते हुए बताया था।

प्रो. जावेद कार से उतरा था। उसने बड़ी हसरत भरी निगाहों से सराय की ओर देखा था। कहा था, "अब तुम मेरे पीछे-पीछे आओ। मैं अपने बुज़ुर्गों का घर खुद ही खोज लूँगा।" वह मुझसे आगे होकर चल पड़ा था। दो एक पल के लिए वह दुविधा में पड़ा था। "बाज़ार को दो रास्ते जाते हैं। एक अड्डे की तरफ से, दूसरा अड्डे और सराय के बीच से होकर। यह रास्ता ठीक रहेगा।" वह बाईं ओर मुड़ा था। मैंने उसे रोका था, "आगे वाला राह भी ठीक रहेगा।"

"न, प्लीज़ मुझे डिस्टर्ब न करो। मैं अपने कदमों की गिनती कर रहा हूँ।" फिर, उसने बताना आरंभ किया था, "यहाँ से सैंतालीस कदम आगे जाकर दाएँ हाथ मुड़ना है। फिर एक सौ तेईस कदम पर बरगद का पेड़ आएगा। बरगद के नीचे ललारी (रंगसाज) बैठा होगा। शायद, अब वह न हो। वहाँ से बाएँ हाथ मुड़ना है। पिचासी कदम आगे जाकर बाईं ओर मुड़ेंगे। बाज़ार खत्म हो जाएगा। दस कदम पर चढ़ाई आएगी। पंद्रह कदम नीचे की ओर जाना पड़ेगा। फिर बाएँ हाथ मुड़ेंगे। बावन कदम चलकर कुइयाँ आएगी। यहाँ से बारह कदम पर बाईं तरफ मेरे बड़े-बुज़ुर्गों का कभी घर हुआ करता था।"

हम ठीक उस घर के सामने पहुँच गए थे। मैंने उसे छेड़ा था, "बड़ा हिसाब रखा है।"

"ये हिसाब मैंने नहीं रखा। मेरे ग्रैंड फॉदर ने रखा हुआ था। वे दूसरे-चौथे दिन अपने घर को याद करते रहते थे। ये मेरे बुज़ुर्गों की जड़ें हैं। मुझे लगता है कि शायद मेरी भी

यहाँ जड़ें हैं। फिजी में भारतीय सोचते हैं कि जहाँ उनके बुज़ुर्गों का नाड़ू नपा होता है, वहीं उनकी जड़ें होती हैं। इस बात की समझ मुझे अब आई है।"

मेरी उससे मुलाकात ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी, इंग्लैंड में एक सेमिनार के दौरान हुई थी। इस सेमिनार का विषय था - 'इंडो पाक विभाजन में नेहरू और जिन्ना का रोल : साइको-एनालैटिक अध्ययन।' जिस होटल में हमें ठहराया गया था, उसमें मेरा कमरा प्रो. जावेद के साथ लगता था। दो तीन मुलाकातों के बाद हम आपस में घुल मिल गए थे। हमें लगा ही नहीं था कि हम पहली बार मिले थे। हमने अपनी भाषा में बातें की थीं। जब मैंने उसे अपने शहर नूरमहल के बारे में बताया था तो उसने कितनी ही देर तक मुझे अपने आलिंगन में लिए रखा था। फिर मेरा हाथ दबाते हुए कहा था, "मुझे अपने बुज़ुर्गों की भूमि का बंदा मिल गया। शायद मेरा काम आसान हो जाए।" मेरे द्वारा कई बार पूछे जाने पर भी उसने अपने काम के विषय में कुछ नहीं बताया था। बस, इतना कहा था, "जिगरा रख, मुझे तो अब हर रोज़ तेरी संगत करनी है।" शीघ्र ही, हमारे संग डा. कलेर भी आ मिला था।

यह सेमिनार एक सप्ताह का था।

तीसरे दिन दूसरे सत्र में कांग्रेस प्रधान पलानी का कांग्रेस अधिवेशन में दिया गया भाषण बहस का मुद्दा बना था - "मैं कुछ दंगा-पीड़ित इलाकों से होकर आया हूँ। एक जगह मैंने एक कुआँ देखा जिसमें औरतों ने अपने बच्चों सहित छलाँग लगाकर अपनी जान बचाई थी। एक अन्य स्थान पर एक मंदिर में लोगों ने इसी वजह से पचास जवान औरतों को मार दिया था। एक घर में मैंने हड्डियों के ढेर देखे जहाँ 107 व्यक्तियों जिनमें अधिकतर स्त्रियाँ और बच्चे थे, को हमलावरों ने घेर कर एक घर में बंद कर दिया था, फिर उन्हें ज़िंदा जला दिया। कुछ मेंबरों ने हम पर आरोप लगाया कि हमने डर कर यह फ़ैसला किया है। मैं इस सच को स्वीकार करता हूँ, पर उस अर्थ में नहीं जिसमें यह आरोप लगाया गया है। यह डर प्राणहानि का या विधवाओं और अनाथों के रुदन का या अनेक घरों के जलाए जाने का नहीं है। डर यह है कि हम ऐसा ही करते रहे, एक-दूजे से बदला लेते रहे, अपमान पर अपमान करते रहे तो आख़िर हमारी स्थिति मानवभक्षियों जैसी और उससे भी बुरी हो जाएगी। इन दुखद परिस्थितियों में मैंने भारत विभाजन का समर्थन किया है।"

जर्मनी से आए डा. स्पैनसर ने किसी पुस्तक में से पटेल के विचार पढ़कर सुनाए थे, "कांग्रेस पाकिस्तान के विरुद्ध है, फिर भी सदन के सामने जो प्रस्ताव है, इस विभाजन को स्वीकार करता है। महासमिति इसे पसंद करे या न करे, असल में पंजाब

और बंगाल, दोनों में पहले से ही पाकिस्तान मौजूद है। ऐसी परिस्थिति में मैं असली पाकिस्तान को ज्यादा पसंद करूँगा, क्योंकि फिर उन लोगों की जिम्मेवारी का कुछ ख़याल रहेगा।"

प्रो. जावेद अपनी कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया था। उसने समय लेकर अपनी बात आरंभ की थी, "मैं सबूत पेश कर सकता हूँ कि कायदे-आजम जिन्ना आख़िर तक पाकिस्तान नहीं चाहते थे। कैबिनेट मिशन की योजना के संबंध में 2 जून 1947 को जिन्ना माउंटबेटन से मिलने गए थे। कांग्रेस ने इस योजना को पहले ही मान लिया था। जिन्ना ने नहीं। माउंटबेटन ने कहा था - इस तरह तो आप अपना पाकिस्तान हमेशा के लिए खो देंगे। इस पर जिन्ना ने एक पंक्ति में जवाब दिया था - 'जो होना है, वही होगा।' कितनी महत्वपूर्ण बात थी कि कायदे-आजम इतिहास के इस अति महत्वपूर्ण और फ़ैसलाकुन पल में भी कोई अहम फ़ैसला लेने से पीछे हट रहे थे।"

डा. जावेद के विचारों और तथ्यों ने एक बार तो हॉल में सन्नाटा पैदा कर दिया था। वहाँ बैठे विद्वानों के मनों में यह प्रश्न हलचल मचाने लगा था कि क्या प्रो. जावेद ऐसा पहला मुसलमान था जिसने पाकिस्तान बनने का विरोध किया है या उसके अंदर यह बात घर कर गई थी कि कायदे-आजम पाकिस्तान नहीं चाहते थे। इसी बात ने सभी का ध्यान खींच लिया था। कइयों ने उठकर उसकी तरफ ख़ासतौर पर देखा भी था।

बाद में, किसी विद्वान ने कहना शुरू किया था, "मैं प्रो. जावेद की बात से सहमत नहीं हूँ। 22-24 मार्च 1940 को लाहौर में मुस्लिम लीग का 27वाँ ऐतिहासिक सैशन हुआ जिसमें कायदे आजम जिन्ना ने कहा था - हिंदू और मुसलमान दो भिन्न-भिन्न धार्मिक दर्शन, सामाजिक रीति-रिवाज और भिन्न-भिन्न संस्कृति वाले हैं। वे न परस्पर शादी-ब्याह कर सकते हैं, न संग बैठकर खाना खा सकते हैं। असल में, ये दो अलग-अलग सभ्यताएँ हैं जो विरोधी विचारधाराओं और भावनाओं पर आधारित हैं। उनके महाकाव्य अलग हैं। उनके नायक अलग हैं और कथाएँ भी अलग हैं। प्रायः एक का नायक दूसरे के लिए खलनायक है। इसी तरह उनकी हार और जीत भी अलग है...।"

समय पूरा हो जाने के कारण वह विद्वान अपनी बात पूरी नहीं कर सका था।

इस सत्र में बहुत ही विचारोत्तेजक बातें हुई थीं।

रात में महफ़िल मेरे कमरे में सजी थी। हम चाहते थे कि इंडो-पाक विभाजन को छोड़कर कुछ अन्य बातें करें। लेकिन डा. कलेर ने डा. स्पैनसर को बुला लिया था। डा. कलेर ने कहा था, "दोस्तो, अब हम ऑफ द रिकार्ड बातें करेंगे।"

कुछ समय बाद ही हमने सेमिनार से भी अधिक गंभीर बातें की थीं।

डा. स्पैनसर ने चुन चुन कर शब्दों में बताया था, "मेरा अब तक का अनुभव यही बताता है कि तुम एशियन लोग तथ्यों को तोड़-मरोड़कर बताते हो। अपने ऊपर कोई दोष नहीं लेते। यही कारण है कि कोई भी बात निखर कर सामने नहीं आती। मैं ही नहीं, जो भी व्यक्ति इंडो-पाक विभाजन के समय की स्थितियों की छानबीन करेगा, उसे ज़ख़्म ही ज़ख़्म दिखाई देंगे। ये अभी कई वर्षों तक हरे ही रहेंगे। और हरे ज़ख़्म बहुत तंग किया करते हैं। ...अब मैं अपनी बात महात्मा गांधी से शुरू करता हूँ। उन दिनों उनकी उम्र 78 वर्ष की थी। नेहरू और सरदार पटेल ने भारत-पाक विभाजन को स्वीकार कर लिया था। इस संबंध में उन्होंने गांधी को एक तरफ रखा था। जब गांधी को पता लगा तो वह संकट में फँस गए। वह जानते थे कि पार्टी पर सरदार पटेल की पकड़ मज़बूत है। नेहरू की जनता पर। यदि गांधी उन दोनों का खुलकर विरोध करते तो गांधी, कांग्रेस और भारत की आज़ादी - तीनों की स्थिति बहुत संकटमय हो सकती थी। दूसरी बड़ी बात, उनमें अब पहले जितनी शक्ति भी नहीं रही थी।

डा. कलेर ने डा. स्पैनसर को टोका था, "गांधी जी ने तो अंग्रेजों को यह भी कहा था कि तुम हमें ईश्वर के भरोसे छोड़ दो। बरबादी में छोड़ दो। हम आपस में तय कर लेंगे, पर तुम चले जाओ।"

"गांधी ने माउंटबेटन के साथ दूसरी मुलाकात में ही कह दिया था कि जिन्ना और मुस्लिम लीग को केंद्र में सरकार बनाने दी जाए। जिन्ना देश के प्रधानमंत्री बनें और जैसे चाहें, देश को चलाएँ। इस पर माउंटबेटन ने पूछा था - जिन्ना पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी। गांधी ने उत्तर दिया था - फिर यही, वही कपटी गांधी।"

"पर पटेल और नेहरू यह नहीं चाहते थे।"

"विभाजन की योजना वी.पी. मेनन ने तैयार की - उच्चकुलीन हिंदू ने, मुस्लिम लीग से छिपा कर।"

"हाँ, गांधी जी ने कहा था, मैं मानता हूँ। पर जैसा कि मैंने सेमिनार में भी कहा था और प्रो. जावेद ने भी इस बात पर ज़ोर दिया था कि जिन्ना भारत-पाक विभाजन के लिए

जिम्मेदार नहीं थे, मैं अब भी अपने विचारों पर ज्यों का त्यों खड़ा हूँ। सभी स्कॉलर तथ्यों को ऐतिहासिक तथ्यों से जोड़कर देखा करते हैं। मैंने एक दूसरी दिशा से भी सोचना प्रारंभ किया है। शायद मैं सही होऊँ। यह है मानव जीन्स। जिन्ना के परिवारवाले दो पीढ़ी पहले हिंदू थे। क्या कहीं न कहीं उनके रक्त में हिंदू धर्म नहीं समाया हुआ था? जिन्ना ने न कभी हिंदू धर्म पर और न ही हिंदुओं के ख़िलाफ़ अपशब्द कहे थे। जितनी इज्ज़त वह तिलक और गोखले को देते थे, उतनी किसी मुसलमान को नहीं।"

एक बार तो सभी के मुँह पर ताले लग गए थे।

शीघ्र ही, प्रो. जावेद ने कमांड अपने हाथ में ले ली थी, "यारो, बात तो इतनी सी थी कि यदि इस बात को कांग्रेस एक बार भी मान लेती कि जिन्ना और मुस्लिम लीग मुसलमानों के प्रतिनिधि हैं, तो शायद बात इतनी न बढ़ती। हमारा इतिहास कुछ और ही होता।"

डा. कलेर ने इतिहास का एक और पन्ना खोल दिया था, "चलो, इस्लाम धर्म से ही शुरू कर लो। मुहम्मद इकबाल ने एक बार कहा था कि इतिहास में संकट के समय इस्लाम ने मुसलमानों की रक्षा की है। न कि मुसलमानों ने इस्लाम की। यदि तुम अपना ध्यान इस्लाम पर केंद्रित करो और उसमें समाहित उज्जवल विचारधारा से प्रेरणा लो तो तुम्हारी बिखरी हुई शक्ति पुनः एकत्र हो जाएगी। मैं उनकी इस बात से सहमत भी हूँ और नहीं भी। तुम पूछो - नहीं कैसे? हिंदुस्तान के लगभग सभी मुसलमानों की सबसे अहम समस्या यही थी कि उनका धर्म विदेशी था। उनके धार्मिक फ़ैसले किसी न किसी रूप में तुर्की अथवा अन्य स्थानों से प्रभावित होते थे। इससे भी बड़ी बात यह थी कि उन्हें असली मुसलमान नहीं माना जाता था। इस्लाम अरबी धर्म है। जो अरबी नहीं है, पर मुसलमान है, वह परिवर्तित है। यहाँ मुसलमानों की ऐसी स्थिति थी कि एक तरफ उनकी मातृभूमि थी, जहाँ वे जन्मे-पले थे, दूसरी तरफ उनकी आस्था थी जिसका सबकुछ अरब में था। जब विदेशी मुसलमान इंडिया में आए तो वे अपने संग औरतें और बच्चे नहीं लाए थे। यहाँ एक अजीब किस्म का इस्लामी राज फैला। कई स्तरों पर यह भिन्न-भिन्न रूपों में देश के मूल निवासियों के साथ जुड़ा हुआ था।"

प्रो. जावेद ने साधारण से कुछ ऊँची आवाज़ में कहा था, "इंडिया में जितने भी मुगल बादशाह, संत, सूफ़ी रहे, किसी ने भी बाहर के खलीफ़ा या पाशा के प्रति अपनी श्रद्धा या सरोकार नहीं रखा था। मुझे इसका एक भी उदाहरण कहीं नहीं मिलता। इस देश के हिंदू भी बाहर से आए थे। मुसलमान भी। उनके लिए यह धरती उनकी मातृभूमि है।

हमारे लिए लगभग वैसी ही। इंडिया में इतने वर्ष इकट्ठे रहने से सारा खून बदल गया था। हमारे चेहरे भी बदलकर एक जैसे हो गए थे। मुसलमानों ने हिंदुओं के अनेक रीति-रिवाज़ अपना लिए थे। हिंदुओं ने मुसलमानों के। दोनों परस्पर इतना घुलमिल गए थे कि उन्होंने एक नई भाषा बना ली थी जिसका नाम उर्दू है। न यह हिंदुओं की भाषा है, न मुसलमानों की।"

डा. स्पैनसर ने पूछा था, "फिर गलती कहाँ हुई थी?"

प्रो. जावेद ने सीधे ही मेरी ओर देखा था मानो कह रहा हो कि अब चुप बैठने से काम नहीं चलेगा, कुछ बोलना ही होगा। मैंने अपनी बात यहाँ से आरंभ की थी, "डा. स्पैनसर, अपनी बात सिद्ध करने के लिए मुझे पीछे जाना पड़ रहा है। तीन मार्च 1707 को औरंगजेब की मृत्यु हुई। यहीं से मुगल सल्तनत की डाउनफॉल शुरू हो गई। औरंगजेब के चौथे पुत्र मुहम्मद शाह के बाद इंडिया के टुकड़े होने लगे। 9 अगस्त 1765 क्लाइव इलाहाबाद में शाह आलम से मिला। शाह आलम ने एक शाही फरमान जारी करके बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी कंपनी को दे दी। यह मुगल सल्तनत के ताबूत में पहला कील था। कार्नवालिस ने परमानेंट सैटलमेंट की नीति लागू की तो मुसलमान जमींदारों का आर्थिक आधार छिन्न-भिन्न होने लगा। हिंदू पहले ही कंपनी में नौकरियाँ करते थे, उन्होंने अवसर का लाभ उठाया। अंग्रेजी शिक्षा और सरकारी नौकरियों में पिछड़ते हुए मुसलमान धीरे-धीरे उद्योगों, बैंकों, शेयर बाजारों, व्यापार आदि यानी कि हर तरफ़ से पिछड़ने लगे। उनका आत्मगौरव और आत्मविश्वास भी खत्म हो गया। उनका गौरवशाली अतीत, शानो-शौकत और उनके महान बादशाह उनके लिए बीते दिनों की बात हो गई थी।"

मैं सामने बैठे प्रो. जावेद की प्रतिक्रिया जानने के लिए रुका तो उसने बात को आगे बढ़ाने के लिए मुझे इशारा किया था। मैं फिर शुरू हो गया था, "वारेन हेस्टिंगज़ ने एक बार कंपनी को चिट्ठी लिखी थी कि भारत की परंपराएँ - हिंदू और मुस्लिम दोनों बहुत मज़बूत, प्रभावशाली और प्राचीन हैं। अंग्रेजों को सामाजिक और न्यायिक कारणों से किसी भी स्थिति में दख़ल नहीं देना चाहिए। 1857 की असफलता के बाद हिंदू और मुसलमान अलग-अलग धर्मों, संप्रदायों और राष्ट्रीयताओं में देखे जाने लगे। ऐसा पहले कुछ नहीं था। देखने वाली बात यह भी थी कि 1857 की असफलताओं के पश्चात बदले हुए हालातों वे स्वयं को नई तरह के अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में देख रहे थे। हालाँकि वे पहले भी अल्पसंख्यक थे पर उनके पास राजनीतिक सत्ता और पावर थी। अब वे सत्ताहीन और पराजित हो गए थे। बौद्धिकता सैयद अहमद से शुरू हुई थी। अहमद ने ही अंग्रेज सरकार को बताया कि अंग्रेजों को हिंदू और मुसलमान

सिपाहियों की अलग-अलग रेजीमेंट रखनी चाहिए। जिससे वे दोनों एक दूसरे से भावनात्मक रूप में जुड़ न सकें। एक को दबाने के लिए दूसरे को इस्तेमाल किया जा सके। अहमद के विचार उसकी पुस्तक 'कॉजिज ऑफ इंडियन रिवोल्ट' में दर्ज हैं जिसकी 500 प्रतियाँ छपी थीं। 498 प्रतियाँ इंग्लैंड में संसद सदस्यों और अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों को भेजी गईं। अमीर अली ने 1910 में मुस्लिम लीग की लंदन में शाखा खोली। अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के अंग्रेज प्रिंसीपल मिस्टर बेक ने मुसलमानों को उकसाया।"

प्रो. जावेद ने बीच में टोकते हुए और खीझते हुए कहा था, "पता नहीं हमारे बीच से धर्म मनफ़ी क्यों नहीं होता। मैं स्वयं इसका शिकार हूँ। डा. गोगना भी। मेरी समझ में नहीं आता या डा. गोगना को जान-बूझकर सावरकर की पुस्तक 'द इंडियन वार आफ़ इंडीपेंडेंस 1857' क्यों भूल गई। इस पुस्तक ने हिंदू-मुसलमानों में दरार की शुरुआत की थी।"

मैंने कहा था, "सॉरी, मैं भूल गया। मैं अपनी बात इन शब्दों के साथ खत्म करता हूँ कि यह लड़ाई उच्च वर्ग जिनमें मनसबदार, जागीरदार, जमींदार आदि थे, की थी। ना कि गरीब वर्ग की क्योंकि इसमें यदि किसी ने अपनी जान माल का नुकसान कराया था तो वह गरीब वर्ग ही था।"

डा. स्पैनसर हमारी बातों से उकता गया था। इसलिए उसने उठते हुए कहा था, "अब सो जाओ। बाकी बातें कल करेंगे।"

डा. स्पैनसर के जाने के बाद हमने इंडो-पाक दोस्ती के नाम के जाम टकराए थे।

मैंने बल देकर कहा था, "हमें यह बात मानकर चलना चाहिए कि विभाजन को भूलना कठिन है। लेकिन इसे याद रखना और भी खतरनाक है।"

प्रो. जावेद ने मेरी ओर गुस्से में देखते हुए कहा था, "जिनके संग बीती है, उनसे पूछकर देखो। वे अभी जीवित हैं। उनके पास अपनी यादें हैं। बँटवारे के इतिहास की यादें। पीछे छूट गए अपने घरों की यादें। उनके किस्से-कहानियाँ सुनो। इन किस्सों, कहानियों से बहुत कुछ जाना जा सकता है।"

डा. कलेर ने उससे पूछा था, "विभाजन के किस्से, कहानियों को खोजना हमारे लिए कितना फायदेमंद है?"

प्रो. जावेद ने मेज़ पर मुक्का मारते हुए कहा था, "बहुत ही महत्वपूर्ण है। एशियन लोगों की सायकी को समझने के लिए किस्से-कहानियों की बहुत अहमियत है। किसी भी शख़्स को मिल लो, वह अपनी आपबीती सुनाने के लिए कोई कहानी अवश्य ही सुनाएगा। इसके बग़ैर वह अपनी बात बता ही नहीं सकता। दूसरी बात मेरे दोस्त, तुम यह बात क्यों भूल जाते हो कि हमने कितना कुछ गँवाया है। जब रेशमा पहली बार इंडिया गई थी तो वह प्राइम मिनिस्टर इंदिरा गांधी से मिली थी। इंदिरा गांधी ने उससे पूछा था - मेरे लायक कोई काम बताओ। रेशमा ने झट से कहा था - मैडम, आप यह बार्डर खोल दो। हम तो उधर चले गए हैं, पर हमारे पीर-बाबा तो इधर हैं। फौजी हमें उनकी मजार पर जाने नहीं देते। हम गाना गाएँ और पीर-बाबाओं को न सुनाएँ, तो गाने का क्या फायदा। कितना बड़ा सच कहा था रेशमा ने! हमारी यादें तो इंडिया में ही हैं। हमारे धार्मिक स्थान अजमेर शरीफ़, बिहार शरीफ़, निजामुद्दीन, दुनिया की मशहूर इमारतें जैसे ताजमहल, जामा मस्जिद, लाल किला, फतहपुर सीकरी यहीं रह गईं। हमने यह सब कुछ गँवाया है। बताओ, तुमने क्या खोया है। हमारे अपने खानदार की कब्रें इंडिया में हैं। मेरे बाबा जी को जब नूरमहल याद आता था या कोई बात चलती थी तो वह अक्सर कहते थे - हमारे देश में ऐसा होता था। हम अपने देश में ऐसा करते थे। उन्होंने कभी इंडिया का नाम नहीं लिया था। कभी पाकिस्तान का नाम नहीं लिया था। उनकी स्मृतियों में तो उनकी जन्मभूमि बसी थी। इसका धर्म से कोई संबंध नहीं था। एक बात और देखने वाली है कि बँटवारे की खामोशियाँ कई तरह की हैं। सितम की बात तो देखो, विभाजन के समय से संबंधित कोई स्मारक नहीं बना। दोस्तो, हमारा एक ही कल्चर है। पंजाबी कल्चर। कोई तो काम करो। यूँ ही चुप बैठकर कुछ नहीं होगा। कम से कम मेरे परिवार के बच्चों को ही खोजने में मेरी मदद करो। शायद, उनमें से कोई ज़िंदा हो।"

डा. कलेर ने पूछा था, "तुम निज के बारे में क्यों सोचते हो?"

प्रो. जावेद का जवाब था, "निज से ही तो बात आगे चलती है। शायद इसके साथ कई अन्य बच्चों का पता लग जाए।"

मैंने कैमरामैन को ताया जी के बारे में बताया था, "ये मेरे ताया जी हैं। मेरे भापा जी के साथ नूरमहल 'जगदंबे ज्वैलर्स' में काम किया करते थे। इनका गाँव 'नवा गाँव' शौकिया है। सारा परिवार अमेरिका और कैनेडा बैठा है। यह पीछे अकेले हैं। कई बार वीज़ा के लिए अप्लाई किया, पर नरेंद्र मोदी की तरह अंग्रेजों ने इनके पासपोर्ट पर हमेशा रिफ्यूज की स्टैंप लगा दी...।"

उन्होंने बीच में ही टोककर कहा था, "अब बस भी कर। पहले पैग डाल। मुझे फिल्म देखने दे।"

मुझे उनके पैग का अंदाजा था। फिर भी मैंने पढ़े-लिखों वाला पैग बनाया था। उन्होंने अपनी नज़रें टी.वी. के स्क्रीन पर टिकाए रखी थीं। एक ही साँस में गिलास खाली कर दिया था। उन्होंने किसी की तरफ देखा नहीं था।

मैंने उनके कान के पास अपना मुँह ले जाकर अपने दोस्तों के बारे में बताया था। मैं कुछ पूछने ही लगा था कि उन्होंने होंठों पर उँगली रखकर चुप रहने का इशारा किया था।

प्रो. जावेद ने अजय भारद्वाज की फिल्म 'रब्बा, अब क्या करें' वहाँ से लगाई थी जहाँ मालेरकोटले के समीप के गाँव के एक अपटूडेट सरदार ने बताना आरंभ किया था, "उन दिनों मैं यहाँ खड़ा हुआ करता था। वो सामने से मैंने मुसलमानों के परिवारों को टोलियों में और अकेले-अकेले भी जाते देखा था। एक दिन एक औरत जा रही थी। उसके सिर पर ट्रंक रखा था। गोद में बच्चा उठा रखा था। हमारे गाँव का जमना उसके पीछे दौड़ा था। जब जमना औरत के करीब पहुँच गया तो उस औरत ने ट्रंक फेंक दिया था। वह अंधाधुंध दौड़ पड़ी थी। जमना को पीछा करते देख औरत ने अपना बच्चा भी फेंक दिया था। जमना ने पहले बच्चे को उठाया था, फिर ट्रंक। गाँव के पास आकर उसने बच्चे को टाँगों से पकड़कर घुमाते हुए उसका सिर शीशम के पेड़ में दे मारा था। गाँव वालों ने इसे पुण्य का काम कहा था। जमना को दूध पिलाया था। फिर मैंने इस जमना को आख़िरी उम्र में कुत्ते की मौत मरते देखा था। उसके सिर में कीड़े पड़ गए थे।"

ताया जी के कहने पर प्रो. जावेद ने दो बार रिवाइंड करके फिल्म चलाई थी।

डा. कलेर ने रिमोट कंट्रोल से आवाज़ तेज कर दी थी।

ताया जी उठकर खड़े हो गए थे। मानो उनके पैरों तले किसी ने आग के अंगारे रख दिए हो। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर ऊपर की ओर देखा था और मरी-सी आवाज़ में कहा था, "रे रब्बा! ये तूने क्या क्या रंग दिखाए थे।"

उनका शरीर भीगी हुई बकरी की भाँति काँपा था। उन्होंने हमारी तरफ एक अजनबी की तरह देखा था। मुझे लगा था कि अधिक उम्र होने के कारण वह कमज़ोर हो गए थे।

मुझे अपनी गलती का अहसास हुआ था कि मुझे इतनी जल्दी ऐसी भावुक किस्म की फिल्म नहीं दिखानी चाहिए थी।"

उन्होंने कहा था, "बेटा, मुझे गाँव छोड़ आ। मुझे दिखाई देना बंद होता जा रहा है।"

उन्हें सामान्य करने के लिए मैंने एक और पैग बनाकर दिया था। उन्होंने गर्दन झुकाये ही गिलास खाली करके मेरी तरफ बढ़ा दिया था। कहा था, "मेरा गिलास भर दे।"

डा. कलेर ने मुझे इशारा किया था कि मैं उन्हें और पैग न दूँ। व्हिस्की तेज थी। यह ताया जी के पैर उठा सकती थी। फिर वह बोलने योग्य नहीं रह सकते थे।

प्रो. जावेद ने मेरे हाथ से बोतल ले ली थी और गिलास भर कर ताया जी को पकड़ा दिया था।

ताया जी चुप थे।

हमें उनकी चुप अखरी थी।

मैं उन्हें बातों में लगाने के लिए अपने भापा जी की बातें छेड़ बैठा था। वह भापा जी के हमउम्र थे। उन दोनों ने एक ही दुकान पर चालीस वर्ष काम किया था। हमारे परिवारों का आपस में आना जाना था। बहुत ही ज्यादा। यद्यपि वह भापा जी से उम्र में बड़े थे, पर वह भापा जी को अपना गुरु मानते थे क्योंकि उन्होंने भापा जी से सुनार का काम सीखा था। एक बार जब मोरारजी देसाई ने नई गोल्ड पॉलिसी लागू की थी तो सराफों के काम बंद होने की कगार पर आ गए थे। पकड़ा-पकड़ाई चल रही थी। उन्हीं दिनों 'जगदंबे ज्वैलर्स' वाले अपनी दुकान नूरमहल से हटा कर ताया जी के गाँव में ले आए थे। सभी कारीगर यहाँ आ गए थे। दो साल ताया जी के चौबारे में टूमें बनाने का काम चलाया था। इन दिनों में उनकें और भापा जी के बीच रिश्ते और अधिक गहरे हो गए थे। भापा जी रात को भी वहीं रुक जाते थे। अब हालाँकि भापा जी इस दुनिया में नहीं रहे थे, पर ताया जी जब भी नूरमहल आते, हमारे घर का चक्कर अवश्य लगाते थे। हमारे दुख-सुख में शामिल होते थे।

प्रो. जावेद ने उन्हें छेड़ने के लिए मुझे इशारा किया था।

उनके चेहरे पर एक अजीब तरह की घबराहट, दुख और खामोशी के भाव थे। उन्होंने मेरी तरफ मुँह घुमाकर पूछा था, "बेटा, कब आया स्पेन से?"

"पाँच दिन पहले। मैंने आपको बताया तो था।"

"मुझे याद नहीं रहा। वापस कब जाना है?"

"तीन हफ्तों बाद।"

"मुझे किसलिए बुलाया था?"

"आप मेरे ताया जी हो। मैं आपको क्यों नहीं बुला सकता।" मैंने एक बार फिर उनके घुटनों को हाथ लगाया था। प्रत्युत्तर में उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया था।

"बारह बच्चों वाली वो कहानी सुनाओ, जो आपने भापा जी के साथ शराब पीते हुए सुनाई थी।"

"पहले मुझे एक और पैग डाल कर दे। गिलास भर दे। लबालब। मैं सच बोलने लायक तो हो जाऊँ... बेटा, इस फिल्म की कहानी तो कुछ भी नहीं। मैंने इससे बड़ा पाप होता अपनी आँखों से देखा था। पाप। अनर्थ। ये देख मेरा ज़ख़्म। पिछले तीस सालों से इसमें रत्ती भर भी फ़र्क़ नहीं पड़ा। मैंने देसी दवा-दारू बहुत की। अंग्रेजी इलाज भी करवाया। लड़कों ने लाखों रुपये खर्च कर दिए। जोंकें लगवाईं, पर ये बारह ज़ख़्म नहीं भरे। ये भरने वाले भी नहीं। एक बार इसमें कीड़े पड़ गए थे। मैंने तीन दिन उन्हें कुछ नहीं कहा था। मरे हुए बच्चे मुझे दिखाई देते थे। चौथे दिन जब मैं दर्द से बेहोश होने वाला था, तो तेरी ताई ने फिनाइल में डूबा फाहा इसमें आगे करके धकेला था। ...मैं अपने किए की सज़ा भुगत रहा हूँ। अभी और पता नहीं, कितनी भुगतनी है।"

प्रो. जावेद, डा. कलेर और कैमरामैन कभी मेरे मुँह की ओर और कभी ताया जी के मुँह की ओर देख रहे थे।

मैंने उन्हें छेड़ा था, "बीच की बात तो बताओ।"

उन्होंने कहा था, "बेटा, सच बताना बहुत कठिन होता है। बहुत सारे सच तो बंदे के साथ ही मर जाते हैं। वह इतने बुरे काम करता है कि किसी को बता ही नहीं सकता। मेरी आँखों से देखा गया सच भी ऐसा ही था। बताने को मेरा हौसला नहीं पड़ता। पहले एक पैग और दो।"

मैंने व्हिस्की का गिलास भर दिया था और एल.सी.डी. की आवाज़ नाममात्र कर दी थी।

उन्होंने बताया था, "दंगा हुआ तो आसपास के गाँवों में लूटमार शुरू हो गई थी। नूरमहल में बहुत सारे मुसलमान रहते थे। जो तगड़े थे, रातोंरात निकल गए थे। गरीब-कमज़ोर फँस गए थे। मैं, सुरजन और करतारा लूटने के लिए नूरमहल गए थे। हमने कई घरों में से चीज़ें इकट्ठी कर ली थीं। फिर हमारे साथ जोगा भी आ मिला था। उसका घर बिलगे की ओर जाने वाली राह में पड़ता है। हम एक घर में घुसे तो वहाँ एक बंद कमरे में कई बच्चे थे। दो से लेकर आठ साल की उम्र के। वे सहमे और डरे हुए थे। वे 'अम्मा कहाँ हो, अम्मा कहाँ हो' पूछ रहे थे। हम सोच में पड़ गए कि इनका क्या करें। घर में कोई सयाना बंदा नहीं था। घर वस्तुओं से भरा पड़ा था। हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि हम यहाँ से क्या-क्या उठाएँ।

हम इसी दुविधा में सोचते हुए बाहर गली में आकर खड़े हो गए थे। पाँच-सात मिनट बाद हमें पंडित बिशन दास आता हुआ दिखाई दिया था। वह पास आया तो सुरजन ने उसको बच्चों के बारे में बताया। उसने हमें कहा कि हम उन बच्चों का काम तमाम कर दें। सपोलों को जीवित नहीं रखना चाहिए। उसने इस काम के लिए मुझे दस रुपये दिए थे। हम 'ना-ना' करते रहे थे। हमारे में से किसी का भी उन्हें मारने का साहस नहीं हो रहा था। बिशनदास ने मुसलमानों द्वारा हिंदुओं और सिक्खों के क़त्लेआम की अनेक घटनाएँ सुनाई थीं। तभी, ज्वाला सिंह भी आ गया था। उसने हमें हल्लाशेरी दी थी। हम तीनों ने बच्चों को भेड़-बकरियों की तरह हाँक लिया था। शहर से बाहर नकोदर की तरफ आबे के पास ले आए थे।

ज्वाला और जोगे ने बड़ा-सा गड्ढा खोदा था। हमने एक एक करके बच्चों को गड्ढे में धकेला था। मैंने गिनती की थी। बारह बच्चे थे। बच्चों ने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया था। मैंने कानों में उँगलियाँ डाल ली थीं। आँखें बंद कर ली थीं। मुझे तो कँपकँपी शुरू हो गई थी। ज्वाला और जोगे ने ज़िंदा बच्चों को दफ़न कर दिया था। मैं तो दस रुपये फेंक कर बेतहाशा गाँव की ओर दौड़ आया था।" उन्होंने आँखें बंद कर ली थीं। मुँह में कितनी देर बड़बड़ाते रहे थे और फिर मानो अपनी खोई हुई शक्ति को एकत्र कर रहे हों, ऐसा उन्होंने किया था। वह पहले से अधिक ऊँची आवाज़ में बोले थे, "मैं अपने ज़िंदा रहते ये ज़ख़्म भरने नहीं दूँगा। ये ज़ख़्म रिसते रहने चाहिए। इनमें बार बार कीड़े पड़ने चाहिए। मैं तो जमना से भी ज्यादा खराब मौत मरना चाहता हूँ।"

उन्होंने बोतल उठाई थी और अपने कच्चे जख़्मों पर आए खुरंडों को नाखूनों से उखाड़कर उन पर शराब उंडेलनी शुरू कर दी थी।

हमारे में इतनी शक्ति नहीं रही थी कि हम उन्हें रोक सकें।

प्रो. जावेद ने जेब में से रूमाल निकाल कर आँखें पोंछ ली थीं। हरि भटनागर से वीडियो कैमरा छीन लिया था। कैसेट निकाल कर बाहर गटर में फेंक दी थी।